स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १८ | गौराब्द ४८६, मास—पद्मनाभ २४, वार—प्रद्युम्न, मंगलवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०२९, १७ अक्टूबर १९७२ | संख्या ५

अक्टूबर १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीबलिराजकृतं श्रीरामकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।८५।३९–४६)

माता देवकीदेवीकी आज्ञा पाकर श्रीबलराम और श्रीकृष्ण योगमायाके बलसे परमभक्त बलि महाराजके निवास-स्थान सुतल लोकमें पहुँचे। बलि महाराजने श्रीबलराम एवं श्रीकृष्णका दर्शन पाकर आनन्दसे परिपूर्ण चित्त होकर उनकी अभ्यर्थना करते हुए सपरिवार उनकी षोड़शोपचारोंसे पूजा की। इसके पश्चात् प्रेमसे द्रवितचित्त होकर बारम्बार उनके पादपद्मोंमें प्रणाम करते हुए अश्रु-पूरित नयनोंसे, पुलकित कलेवरसे एवं गद्गद स्वरसे इस प्रकार उन दोनोंकी वे स्तुति करने लगे—

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे ।
सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥

मैं महापुरुष श्रीअनन्तदेव एवं ज्ञान शास्त्र और योगशास्त्रके विस्तार करनेवाले जगद्विधाता, सबके अन्तर्यामी ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णको प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापञ्चाप्यदुर्लभम् ।
रजस्तमः स्वभावानां यन्नः प्राप्तो यदृच्छया ॥ ४० ॥

आप दोनोंका दर्शन हम जैसे रजः एवं तमोगुण युक्त व्यक्तियोंके लिए अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी आपकी कृपाप्राप्त होने पर सुलभ है जैसे कि आज हमने आप दोनोंका हठात् दर्शन प्राप्त किया ॥ ४० ॥

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥
विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि ।
नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥
केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः ।
न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥

प्रभो ! चिर बद्धवैरयुक्त हम और हमारे ही समान दूसरे दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथनायक आदि जो सभी हैं, विशुद्ध सत्त्वस्वरूप एवं भक्तिशास्त्रोंमें कहे गये सच्चिदानन्दमय शरीरधारी आपके प्रति दृढ़ वैरभावयुक्त भक्तिद्वारा (शिशुपालादि) तथा अनुरागयुक्त भक्तिद्वारा (गोपियाँ आदि) आपका जो साक्षात्कार करने में समर्थ हुए हैं, ऐसा साक्षात्कार प्राप्त करनेमें सत्त्वगुण प्रधान देवता भी समर्थ नहीं हुए हैं ॥ ४१-४३ ॥

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर ।
न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥४४॥

हे योगेश्वरेश्वर ! ब्रह्मादि योगीन्द्र भी 'यह इस प्रकार है'—ऐसा स्वरूपतः एवं विशेषकर आपकी योगमायाको प्रायः जान नहीं पाते । इसलिए हम उसे किस प्रकार जान सकेंगे ? ॥ ४४ ॥

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत् पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ।
निष्क्रम्य विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तः शान्तो यथैक उत सर्वसखश्चरामि ॥४५॥

हे प्रभो ! पूर्णकाम महाजनोंके भी अन्वेषण करने योग्य आपके पदकमलरूप आश्रयसे दूरमें स्थित गृहरूपी अन्धकूपमें पतित मैं जिससे उसका परित्याग कर सर्वजनाश्रय वृक्षमूलमें

स्वयं गिरे हुए फलद्वारा जीवन धारण करते हुए शान्त रूपसे एकान्तमें अवस्थान कर सकूँ या सभी जीवोंके बान्धवरूप महापुरुषोंके साथ भ्रमण कर सकूँ—ऐसा अनुग्रह आप करें ॥४५॥

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान् कुरु नः प्रभो ।
पुमान् यच्छ्रद्धयातिष्ठंश्चोदनया विमुच्यते ॥ ४६ ॥

(यदि कहा जाय, अल्प पुण्य वाले हम जैसे व्यक्तियोंके लिए यह कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसलिए कह रहा हूँ) हे जीवेश ! हे प्रभो ! पुरुष लोग श्रद्धाके साथ आपका अनुशासन पालन कर विधि-निषेध रूप बन्धनसे मुक्त होते हैं। आप ऐसी शिक्षा प्रदान कर मुझे निष्पाप करें ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीबलिराजकृतं श्रीरामकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ इति श्रीबलिराजकृत श्रीरामकृष्णस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

हरिभक्तका महान् प्रताप

हरिके जन की अति ठकुराई ।
महाराज, रिषिराज, राजमुनि, बेखत रहे लजाई ॥
निरभय देह राज-गढ़ ताकौ, लोक मनन-उतसाहु ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ये भये चोर तें साहु ॥
दृढ़ बिस्वास कियो सिंहासन, तापर बैठे भूप ।
हरि-जस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप ॥
हरि-पद-पंकज पियो प्रेम-रस, ताहो कै रंग राती ।
मंत्री ज्ञान न औसर पावै, कहत बात सकुचाती ॥
अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारैं, धर्म-मोक्ष सिर नावैं ।
बुद्धि बिबेक बिचित्र पौरिया, समय न कबहूँ पावैं ॥
अष्ट महासिधि द्वारैं ठाढ़ीं कर जोरे, डर लीन्हे ।
छरीदार बैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे ॥
माया, काल, कछू नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै ।
सूरदास यह सकल समग्री, प्रभु-प्रताप पहिचानै ॥

(भक्तप्रवर सूरदासजी)

भगवत्सेवासे भक्त-सेवाकी श्रेष्ठता

भगवान्‌की आराधना सभी आराधनाओं से भी श्रेष्ठ है। जो व्यक्ति भगवान्‌की आराधना करते हैं, उन लोगोंकी आराधना भगवान्‌की आराधनाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। शास्त्रोंमें भी ऐसा ही वर्णित है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

विष्णुकी सेवा तो अनेक व्यक्ति करते हैं। किन्तु उनके भक्तोंकी सेवा—जिनकी सेवा करनेके लिये स्वयं भगवान् भी व्यस्त हैं, ऐसे वैष्णवोंकी सेवा करनेकी प्रवृत्ति मूर्ख जड़बुद्धि-परायण व्यक्तियोंकी नहीं होती। हमारा प्रधान कर्त्तव्य वैष्णवोंकी सेवा है। कई प्रचारकोंने भगवान्‌की सेवाकी बात कही है, किन्तु भगवान् श्रीगौरसुन्दरने भक्तोंकी सेवा की सर्वोत्तमता कही है।

हम कई समय श्रीमद्भागवतके आदेश-प्रतिपालन एवं भक्तोंकी श्रेणी-निर्णयमें उदासीन हो जाते हैं। किन्तु श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

अर्चायामेव हरये यः पूजां श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥

भा० ११।२।४७)

अर्थात् लौकिक श्रद्धाके साथ जो अर्चामूर्त्तिमें हरिपूजा करते हैं, किन्तु हरिभक्त एवं हरिके अधिष्ठान स्वरूप दूसरे जीवों पर श्रद्धा एवं दया नहीं करते, वे कनिष्ठ हैं। निम्नाधिकारमें रहते समय या प्राकृत विचार में रहते समय भगवान्‌के भक्तकी अपेक्षा अर्चा स्वरूप ही हमारे निकट आराध्य वस्तुके रूपमें जान पड़ते हैं। किन्तु उनसे भी उन्नत सेवाधिकारी उन पर भी (कनिष्ठाधिकारी या बालिश पर) कृपा करते हैं। जो व्यक्ति भगवान्‌के भक्तोंकी सेवा समझ नहीं पाते, उन पर कृपा करनेके लिये मध्यमाधिकारी भक्त परमेश्वरके प्रति प्रेम, उनके भक्तोंके साथ मित्रता, भगवद्भक्तोंकी सेवाकी महिमाके विषयमें अज्ञ (अबोध) व्यक्तियों पर कृपा एवं विद्वेषियोंकी उपेक्षा करते हैं। यही बात श्रीमद्भागवतमें वर्णित है—

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥

(भा० ११।२।४६)

जहाँ मूर्त्तिमान् भगवद्विग्रह—जहाँसे भगवद्विग्रहकी सजीव कथा प्रकाशित होती है, जहाँ प्रश्न करने पर उत्तर पाया जाता है, सेवा किसे कहते हैं—यह बात जानी जाती है, ऐसे भगवान्‌के भक्तोंकी सेवा भगवान्‌की अर्चा-मूर्त्तिकी सेवासे भी श्रेष्ठ है। अर्चामूर्त्ति की सेवा भी भगवद्भक्तोंकी वाणीके श्रवणके बिना भली प्रकारसे सम्पन्न नहीं हो सकती।

अर्चा-मूर्त्ति आठ प्रकारकी है—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥

(भा० ११।२७।१२)

अर्थात् (१) शिलामयी, (२) काष्ठमयी, (३) लोहा, सोना आदि धातुमयी, (४) मृण्मयी,

(५) चित्रपटमयी, (६) बालुकामयी (रेतीकी), (७) मनोमयी एवं (८) मणिमयी।

श्रीलोकाचार्यपादके अनुसार भगवान् जीवोंके निकट पांच प्रकारसे प्रकाशित होते हैं—(१) परतत्त्व, (२) व्यूहतत्त्व, (३) विभव-तत्त्व, (४) अन्तर्यामी-तत्त्व एवं (५) अर्चावतार।

वैकुण्ठमें विराजमान तुरीय वस्तु परमेश्वर या सभी जीवोंके आराध्य स्वयं भगवान् ही परतत्त्व हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये व्यूह-तत्त्व हैं। राम—नृसिंहादि अवतार ही वैभव-तत्त्व हैं। सर्वजीव प्रविष्ट परमात्मा ही अन्तर्यामी-तत्त्व हैं। नित्य नाम-रूप-गुण-लीलाविशिष्ट भगवद्विग्रहका प्राकृत जीवोंके मंगलके लिये लौकलोचनमें स्थूल अर्चाकारमें प्रकटनया करुणामय सच्चिदानन्द-स्वरूपमें प्रकटनका ही नाम अर्चावतार है।

जगतमें एक ही समय व्यक्तिविशेषके द्वारा द्विपाद-दर्शन, त्रिपाद-दर्शन और चतुष्पाद-दर्शन सम्भव नहीं है। बाहरी जगतमें हम १८० अंश मात्र देख पाते हैं। बाकी १८० अंश पश्चाद् भागमें हमारी दृष्टि से अगोचर रहता है।

आकाश-मण्डलका भी हम आधा भाग ही देख पाते हैं, बाकी आधा देख नहीं पाते। इसलिये दर्शनकारीके रूपमें यहाँ त्रिपाद दर्शनकी बात हमारे निकट अज्ञात है। एकपाद भूमिकामें अर्थात् वर्त्तमान परिदृश्य-मान जगतमें एक ही समय पूर्ण वस्तुका दर्शन नहीं होता। भगवान्के चार प्रकारके प्रकाश-भेदकी बात नहीं जाननेसे हम पूर्ण ज्ञानकी बात नहीं जान सकते। भगवान्की कृपासे भगवान्के चारों प्रकाश-भेदका दर्शन एक ही समयमें संभव हो सकता है। एकेश्वर परायण व्यक्ति लोग चतुष्पादका दर्शन कर सकते हैं। भगवान् चतुर्व्यूहमें प्रकट होकर एक ही समय उनके चार प्रकारके चतुष्पाद-दर्शनको प्रकाशित करते हैं। किन्तु वेदान्तके उत्पत्त्य-संभवाधिकरण छठें पादके शंकर-शारीरक भाष्यमें इस चतुष्पाद-दर्शनकी बात पर आक्रमण किया गया है। अविचिन्त्य शक्तिमय भगवान् एक ही साथ चार रूपोंमें प्रकाशित होकर भी उनका अद्वयत्व या पूर्णता सम्पूर्ण रूपसे संरक्षित है। सर्वशक्तिमान् भगवान् जीवोंके समान खण्डित या दूसरेके द्वारा मापे जाने योग्य वस्तु नहीं हैं जो वे चार प्रकारसे प्रकाशित होने पर उनकी अद्वितीय सत्ताके संरक्षणमें असमर्थ हो जाय।

व्यूहतत्त्वके पश्चात् तीसरा वैभव-तत्त्व है। सौभाग्यवान् व्यक्तियोंके निकट भगवान् मत्स्य-कूर्म-वराह-नृसिंह-राम आदि नैमित्तिक अवतार रूपसे यथासमयमें प्रकट होते हैं। वैभव-दर्शनकी योग्यता वर्त्तमान समयमें हम जैसे साधारण जीवोंकी नहीं होती। इसलिये अन्तर्यामी परमात्माके रूपमें भगवान् हमारे अन्तःकरणमें प्रकाशित होकर हमारी चेतनताकी वृत्तिको जगाते हैं। उसमें भी योग्यता नहीं होने पर वे पाँचवें अधिष्ठान अर्चावतार (शिलामयी, काष्ठमयी, मृन्मयी, चित्रपटमयी आदि) रूपसे जगतमें प्रकाशित होते हैं। ये वस्तु वैभव-तत्त्वकी तरह प्रकट-कालीन तत्त्व मात्र नहीं हैं। किन्तु मेरे समान भाग्यहीन व्यक्तिके लिये परम उपयोगी एवं करुणामय हैं। अर्चावतारके साथ दूसरे चार प्रकारके तत्त्वोंका परस्पर कोई भेद नहीं है।

केवल उनमें विलासकी विचित्रता मात्र वर्त्तमान है। अर्चावतार जीवोंके मनरूपी कारखानेकी कोई काल्पनिक सामग्री नहीं हैं। किन्तु भगवान्‌के अपने नित्य रूपके, उनके अपने नित्य नामके, उनके अपने नित्य गुणोंके, उनके अपने नित्यलीलाके मूर्त्तिमान् अवतार हैं।

मूर्त्ति गठन करनेवाले (Icono grapher) एवं मूर्त्ति-ध्वंस करनेवाले (Iconoclast)—ये दोनों किसी न किसी प्रकारसे पौत्तलिक हैं। विष्णुके अर्चा-विग्रहके उपासक लोग ऐसे पौत्तलिकों द्वारा आक्रमण करने योग्य वस्तु नहीं हैं। क्योंकि वे मूर्त्ति-गठनकारीकी तरह मूर्त्तिकी कल्पना नहीं करते या मूर्त्ति-ध्वंसकारीकी तरह मूर्त्तिका ध्वंस या विसर्जन नहीं करते। वे लोग 'काठके ठाकुर', 'मिट्टीके ठाकुर' आदि दर्शन करते हुए अपने आपको भोगमय दार्शनिक के समान नहीं समझते।

चेतन-धर्मकी पूर्ण अभिव्यक्ति (या प्रकाश) कानमें भगवान्‌के कीर्त्तनके प्रवेश करने पर होती है। कानमें भगवत्कीर्त्तनके प्रवेश करने पर आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, मन, वाणी, हाथ, पाँव, आदि सभी इन्द्रियाँ संशोधित एवं संयमित होकर सत्पथमें चालित होंगी। कानमें चेतनमय कीर्त्तनके प्रवेश करने पर बाहरी दर्शन एवं जड़ीय वस्तुओंके स्पर्शसे परित्राण प्राप्त होकर पूर्णवस्तुका दर्शन प्राप्त होगा।

भगवद्वस्तुके दर्शन, आराधना आदिकी आवश्यकता है। किन्तु वर्त्तमान समयमें हमें भगवद्वस्तुका दर्शन नहीं हो रहा है। बाहरी जगतका दर्शन 'भगवान्‌का दर्शन' नहीं है। भगवान्‌के प्रकाशित होने पर प्रकाशकी बाधास्वरूप इन्द्रियाँ और बाधा नहीं दे सकतीं। ये बाधाएँ एकमात्र श्रवणके द्वारा ही दूर हो सकती हैं। श्रवणफलसे जीव भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण एवं भगवान् की कृपा पानेका अधिकारी होता है।

इसलिये भगवान् श्रीगौरसुन्दरने जड़-जगतमें जीवोंकी वर्त्तमान प्राकृत अवस्थामें सबसे नीचे स्तरमें अवस्थान करनेका उपदेश दिया है। अभाव, विपत्ति, असुविधा आदि अवस्थाओंमें सब प्रकारसे सहनशीलता रखने की आवश्यकता बतलायी है। बाहरी उपदेश को छोड़कर अन्तरके संयमके लिये 'अमानी एवं मानद' होकर सब समय हरिकीर्त्तन करनेका आदेश ही उन्होंने दिया है। हरिकथा-कीर्त्तन और विश्वकथा-कीर्त्तनमें बहुत पार्थक्य है। विश्वकथा कीर्त्तन अनित्य है। किन्तु हरिकीर्त्तन एवं उनके कीर्त्तनीय तत्त्व—ये दोनों ही नित्य हैं। ऐसे कीर्त्तन द्वारा स्वयं ही इन्द्रियाँ संयमित और नियमित होती हैं। इन सभी बातोंकी आलोचनाका नाम ही हरिकथा-आलोचना है। जो व्यक्ति इस हरिकथाकी आलोचनाको प्रधानता एवं मुख्यता देते हैं, उनके कार्य-कलाप आदि परम आराधनाके विषय हैं। ऐसा विचार जिनमें सब समय देदीप्यमान एवं जागृत है, वे ही वरेण्य या सर्वश्रेष्ठ हैं। ऐसे भगवद्भक्तों की पूजाके द्वारा ही पूज्य वस्तुकी पूजाकी पूर्णता सम्पन्न होती है। केवल भगवान्‌की पूजासे ही पूर्णता सम्पन्न नहीं होती। उसमें बाकी रह जाता है। भगवान्‌के भक्तोंकी पूजा

से ही भगवान्‌की पूजाकी पूर्णता सम्पन्न होती है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥
(भा० ११।२।४५)

जो व्यक्ति समस्त भूतोंमें अपनी एवं भगवान्‌की सत्ता तथा अपनेमें समस्त भूतोंकी सत्ताका अनुभव करते हैं, वे उत्तम भागवत हैं ।

सभी ही भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं, मैंने ही केवल भगवान्‌की सेवा नहीं की। मुझसे छोटा और कोई नहीं है ।

कृष्णको बहुतसे व्यक्ति 'ऐतिहासिक', 'रूपक' आदि समझते हैं। किन्तु कृष्ण इतिहासिक कोई वस्तु या काल्पनिक रूपक पदार्थके समान प्रकट नहीं होते। वे श्रीकृष्ण अखिलरसामृत-मूर्त्ति हैं । कृष्णपादपद्मोंमें सभी रसोंकी ही बात पूर्ण रूपसे देखी जाती है। कई समय विश्वसे संग्रहीत विचार द्वारा वासुदेवको ही परतत्त्व कहा जाता है। वासुदेवके साथ महालक्ष्मी, सीताके साथ रामचन्द्र आदिकी उपासनाकी बात भी प्रचारित है । किन्तु श्रीराधागोविन्दकी उपासनाके बिना रसकी परिपूर्णता कहीं भी पायी नहीं जा सकती। शान्त, दास्य एवं गौरव-सख्यार्द्धके द्वारा भगवान्‌की उपासना की अपेक्षा जहाँ निकट सम्बन्धसे विश्रम्भ (गौरवरहित) अवस्थामें व्रज-बालक लोग सबके आराध्य कृष्णके कन्धे पैर रखते हैं, तालके पेड़से ताल संग्रह कर उस तालका उच्छिष्ट-अवशेष कृष्णको प्रीतिपूर्वक प्रदान करते हैं, ऐसी प्रीतिमयी चेष्टा ही अधिकतर सेवामयी है। कोई-कोई आराध्य वस्तुको माता-पिताके रूपसे विचार किया करते हैं। किन्तु माता पिताके निकट हम द्रव्यादि चाहते हैं। वे हमारी निरुपाय अवस्थामें हमारी सेवा करते हैं। हम उन्हें हमारे पूजनीय कहने पर भी एवं वे हमें उनके सेवक कहने पर भी कार्यका विचार करने पर उनके द्वारा हम अधिकतर अपनी सेवा करा लेते हैं। हमारे जन्मके पहलेसे, जन्मके पश्चात् शिशुकाल, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, पौगण्डावस्था एवं यौवनावस्थामें भी नाना प्रकारसे माता-पिताके द्वारा अपनी सेवा ले ही लेते हैं। किन्तु भगवान्‌के पुत्रत्व-विचारमें माता-पिता नित्यकाल भगवान्‌की गौरवहीन सेवा कर सकते हैं। माता-पिता पुत्रके जन्म होनेके पहले से ही एवं दूसरे मुहूर्तसे ही पुत्र की सेवा कर सकते हैं। भगवान्‌के पितृत्व-विचारमें वैसा सौन्दर्य या रस-माधुरी नहीं है। इसलिये श्रील माधवेन्द्रपुरीपादने भी कहा है—

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे
भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः ।
अहमिह नन्दं वन्दे
यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥

संसारसे भीत व्यक्तियोंमें से कुछ वेदशास्त्र पढ़ें तो पढ़ लें, कुछ स्मृति-शास्त्र पाठ कर प्रयोग-निपुण बन जाय और कुछ महाभारत का पाठ कर नीति-शिक्षा भले ही कर लें, मैं किन्तु उन नन्द महाराजकी वन्दना करता हूँ, जिनके आँगनमें परब्रह्म श्रीकृष्ण लोटपोट कर रहे हैं।

गोपियोंने अपने सर्वाङ्गोंद्वारा कृष्णानुशीलन करनेका जो आदर्श दिखलाया है, उसमें सभी रसोंका एक साथ पूर्णविस्थान प्रकट हुआ है। गोपियोंने कहा है—

आदुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसार-पतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः॥

(भा० १०।८२।४८)

अर्थात् हे कमलनाभ श्रीकृष्ण! आपके पादपद्मयुगलका अगाध ज्ञानवाले ब्रह्मादि योगेश्वर लोग भी सर्वदा हृदयमें ध्यान किया करते हैं एवं वह संसाररूपी कुएमें गिरे हुए जीवोंके उद्धारका एकमात्र अवलम्बन-स्वरूप है। गृहसेविनी हमारे मनमें भी सर्वदा आपका चरणयुगल आविर्भूत रहें।

जब विरहव्याकुल सभी गोपसुन्दरियाँ कुरुक्षेत्रमें कृष्णको देख पायीं, तब उन्होंने कहा था कि वे अगाधज्ञान युक्त योगियोंकी तरह ध्यान कर दूरसे कृष्णका दर्शन करना नहीं चाहतीं। दूरकी वस्तुका ही ध्यान किया जाता है। जो वस्तु एकमात्र गोपियोंका निजस्व है, करतलगत है, सहज एवं सुलभ है, उस वस्तुका वे ध्यान क्यों करें? सभी गोपियाँ गृहत्याग कर कठोर वैराग्य-तपस्यादि द्वारा भी उनका भजन करना नहीं चाहतीं। वे कृष्ण-गृहव्रता हैं। कृष्णको लेकर उनका संसार है। वे सब अंगोंद्वारा कान्त कृष्णकी सेवा करती हैं। यह सर्वाङ्गीन, सर्वकालीन, सब रसोंद्वारा कृष्णानुशीलन एकमात्र गोपसुन्दरियोंकी आराधनामें ही व्यक्त हुआ है। बालकृष्णकी उपासनाकी अपेक्षा किशोर कृष्णकी उपासना अधिकतर चमत्कारितामयी है।

साधारण प्राकृत नैतिक विचारसे या जागतिक प्रत्यक्ष-दर्शनके अनुमान द्वारा उत्पन्न ज्ञान-प्रतिफलनमें जो राधागोविन्दकी उपासना परम हेय या तुच्छ जान पड़ती है, उस विकृत, प्रतिफलित हेय विचारको विनष्ट कर जिन राधागोविन्दकी उपासनामें एकमात्र वास्तव परमोपादेयत्व प्रदर्शित हुआ है, ऐसे राधागोविन्दकी उपासनाकी प्रेमपूर्वक सर्वदा जो चर्चा करते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं। ऐसे भक्तोंकी आराधना करना ही सर्वश्रेष्ठ कार्य है। ऐसे कार्यमें जिनका चित्त व्यस्त हुआ है, उनके इस जगतमें रहने पर भी हम उनकी सेवा करेंगे एवं नित्यलीलामें प्रवेश करने पर भी उनकी ही सेवा करेंगे। उनके इस जगत्में रहते समय हम कई बार अपराध कर बैठते हैं। हम उन्हें 'उपदेशक', 'गुरु' इत्यादि मात्र समझ लेते हैं। किन्तु जिस समय वे इस जगत्में और हमारी सेवाके लिये अधिकार नहीं पाते, ऐसे समयमें इस जगतमें रहकर भी हम उनकी सेवा करनेका सुयोग पाते हैं। भगवान् जिन पर कृपा करते हैं, उन्हें नित्यलीलाके साथ-साथ नित्यसेवाका अधिकार देते हैं। कुछ सोचते हैं—'रामके गुरु शिव हैं, शिवके गुरु राम हैं।' यह बहुत विरुद्ध बात है। किन्तु राम यदि भक्तवात्सल्य के लिये महादेवकी सेवा करें, भगवद्भक्तकी उपासना करें, तो ऐसा करने पर श्रीरामचन्द्र जीकी भगवत्ताको लेशमात्र भी हानि नहीं होती।

तृणादपि सुनीच होनेपर, स्वयं उत्तम होकर भी मानशून्य एवं मानद होनेपर ही हरिकीर्त्तनका अधिकार पाया जा सकता है। भक्त लोग भगवान्‌की सेवामात्र नहीं करते। किन्तु जो व्यक्ति भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं या हरिकीर्त्तन कर रहे हैं, ऐसे हरिकीर्त्तन करने वालोंकी हरिकीर्त्तनमें सहायता करते हैं।

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

हरि भक्तोंकी महिमा

श्रीप्रह्लादजीको धारण करते हुए श्रीधरणीदेवी इस प्रकारसे हरि-भक्तकी महिमाका वर्णन करने लगीं—

अक्ष्णोः फलं त्वादृशदर्शनं हि तनोः फलं त्वादृशगात्रसंगः।
जिह्वाफलं त्वादृशकीर्त्तनं हि सुदुर्लभा भागवता हि लोके॥

हे प्रह्लाद! तुम्हारे जैसे परम पवित्र आत्माका दर्शन करनेसे ही इन नेत्रोंकी सार्थकता है, तुम्हारे जैसे भक्तोंका शरीर स्पर्श करनेसे ही शरीरकी सार्थकता है एवं तुम्हारे जैसे भागवतोंका गुणकीर्त्तन करनेसे ही जिह्वाकी सार्थकता है। क्योंकि इस जगत्‌में तुम जैसे भागवत अत्यन्त दुर्लभ हैं॥

एतावता मे सफलं श्रमोऽस्तु समस्तमेतद्भुवनं दधत्याः॥
यस्त्वादृशा भागवताश्चरन्ति द्वित्रैपदैर्मां सकलां पुनन्तः॥

मैं इस सारे जगत्‌को धारण करती हूँ। किन्तु इस समय मेरा परिश्रम अनायास ही सफल हो रहा है। क्योंकि तुम जैसे हरिभक्त परायण मनुष्य दो-तीन पद-चालन द्वारासे ही सम्पूर्ण रूपसे मुझे पवित्र कर मेरे ऊपर विचरण कर रहे हैं॥

अहो कृतार्थः सुतरां नृलोको यस्मिन् स्थितो भागवतोत्तमोऽसि।
स्पृशन्ति पश्यन्ति च ये भवन्तं भवांश्च यांस्ते हरिलोकभाजः॥

आहा! इसलिये यह नरलोक कृतार्थ हुआ। क्योंकि इस मर्त्य-लोकमें प्रधान हरिभक्त तुम अवस्थान कर रहे हो। सभी मनुष्य ही तुम्हारा स्पर्शन एवं दर्शन कर रहे हैं और तुम भी जिन्हें दर्शन एवं स्पर्शन कर रहे हो, वे सभी व्यक्ति ही श्रीहरिके धामको प्राप्त होंगे॥

(श्रीहरिभक्तिसुधोदय १३।२,४,७)

प्रश्नोत्तर

(अपराध)

१—न जानकर असत्संग करना क्या अपराध नहीं है ?

"बिना जाने असाधु-संग करने पर भी आप लोग भक्तिके निकट अपराधी बन रहे हैं।"

—'वैष्णव-निन्दा' स० तो० ५।५

२—अपराधका सर्वाधिक गुरुत्व क्यों है ?

"वैष्णव-जीवोंका अनादर करने पर अपराध होता है । पापसमूह सामान्य प्रायश्चित्तसे ही नष्ट हो जाते हैं। किन्तु अपराध सहज ही नहीं जाता । पाप स्थूल एवं लिंग शरीर-सम्बन्धी हैं । अपराध जीवका आत्मनिष्ठ पतनविशेष है । अतएव जो व्यक्ति भगवद्भजन करेंगे, उनके लिए अपराधोंसे विशेष आशंका रखना आवश्यक है।"

—'वैष्णव-निन्दा', स० तो० ५।२

३—अपराध किसे कहते हैं ?

"साधु और ईश्वरके प्रति (पाप, पातक, महापातकादि) करने पर उसे अपराध कहते हैं । अपराध सबसे अधिक कठिन और परित्याग करने योग्य है।"

—चै० शि० २।५

४—भक्तिदेवीके निकट अपराधी कौन हैं ?

"ईर्ष्या, द्वेष, दांभिकता, प्रतिष्ठादि भक्तिबाधक प्रवृत्तिके द्वारा परिचालित होकर जो सभी व्यक्ति दूसरों (वैष्णवों) की आलोचना करते हैं, वे लोग भक्तिदेवीके निकट अपराधी हैं।"

—'प्रजल्प', स० तो० १०।१०

५—मध्यमाधिकारीका किस प्रकार वैष्णवापराध होता है ?

"मध्यम-वैष्णव होने पर ही शुद्ध वैष्णवोंमें गणना होती है । वे ही वैष्णवावैष्णव-विचारमें अपराधी हैं। क्योंकि शुद्ध वैष्णव सेवा ही उनका प्रयोजन है। वैष्णव एवं अवैष्णव का विचार परित्याग करने पर मध्यम वैष्णव का वैष्णवापराध होता है।"

—'साधुनिन्दा' ह० चि०

६—"वैष्णवापराध' की अपेक्षा गुरुतर अपराध है क्या ?

"वैष्णवोंके अपमानकी अपेक्षा और अधिक अपराध जीवोंके लिए संभव नहीं है।"

—'समालोचना' स० तो० २।६

७—वैष्णवमें जातिबुद्धि करनेवालोंकी परीक्षा कहाँ है ?

"जो व्यक्ति जातिबुद्धि कर शुद्ध वैष्णवोंके अधरामृत-सेवनसे विमुख हैं, वे समबुद्धिरहित कपट व्यक्ति हैं। उन्हें 'वैष्णव' नहीं कहा जा सकता। जो सभी व्यक्ति जातिका अभिमान करते हैं, महोत्सवका अधरामृत ही उनकी परीक्षाका स्थान है।"

—प्रे० प्र० ७म प्र०

८—वैष्णवोंमें जातिबुद्धि करना अनुचित क्यों है ?

"यदि आत्मवंचना की आशंका या भय है, तो वैष्णवोंमें जातिबुद्धि न करें।"

—'वैष्णवोंमें जातिबुद्धि' स० तो० ६।६

९—कैसे-कैसे दोष लेकर निन्दा करने पर वैष्णव-निन्दा होती है ?

"जो व्यक्ति वैष्णवोंका जातिदोष, भूलसे आगत दोष, नष्टप्राय-दोष एवं शरणागतिके पूर्व आचरण किये गये दोष आदि लेकर वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं, वे वैष्णव-निन्दक हैं। नाममें कदापि उनकी रुचि न होगी। जो व्यक्ति शुद्ध भक्तिका आश्रय ग्रहण किये हुए हैं, वे शुद्ध वैष्णव हैं। कभी हठात् उनमें पहले कहे गये चारों दोष रह सकते हैं। उनमें अन्य कोई दोष नहीं रह सकते।"

—'साधुनिन्दा' ह० चि०

१०—भक्ति प्राप्त करनेका सहज उपाय क्या है ?

वैष्णवोंके प्रति जातिबुद्धि छोड़कर शुद्ध नामपरायण साधुकी चरणधूलि शरीरमें भक्तिपूर्वक लेपन करेंगे।"

—'अन्य शुभकर्मका नामके साथ समान ज्ञान', ह० चि०

११—विष्णु मन्दिरमें किसे प्रणाम करनेपर सेवापराध होता है ?

"देव (विष्णु या भगवान) मन्दिरमें विष्णु भगवान्‌को छोड़कर दूसरे किसी का अभिवादन नहीं करेंगे। केवल अपने गुरुदेवको अवश्य प्रणाम करेंगे।"

—'सेवापराध', ह० चि०

१२—कृष्ण-संसार किस प्रकार है ?

"कृष्णसंसारमें कोई शठता नहीं है। वहाँ सम्पूर्ण सरलता वर्त्तमान है, वहाँ कपटता नहीं है।"

—जै० ध० ७वाँ अ०

१३—सद्गृहस्थ किस प्रकारके व्यक्तिको मुष्टि-भिक्षा प्रदान करेंगे ?

"ऐसे अवैध भिक्षा-व्यवसाय करने वालोंको मुष्टि-भिक्षा देकर गृहस्थ लोग जो अपराध कर रहे हैं, उसके द्वारा क्रमशः अवनति हो रही है। अभी समाज-संस्कारके समय इस बुरी प्रथाको दूर करना आवश्यक है। ऐसा होने पर सद्गृहस्थकी अवस्था अच्छी होगी, योग्य भिक्षुकका दुःख दूर होगा एवं संसारकी साधारण उन्नति होगी। 'अपात्रे दीयते दानं तद्दानं तामसं विदुः'—इस भगवद्वाक्यका अवलम्बन कर सभी व्यक्ति ही सुपात्रको दान देंगे।"

—'मुष्टि-भिक्षा', स० तो० ६।३

१४—सर्वसाधारण लोगोंके निकट रस-गानका श्रवण कीर्त्तन करना क्या अपराध नहीं है ?

"श्रीराधागोविन्दकी शृङ्गार-लीलाके गीत एवं श्रवण—दोनों ही प्रधान उपासना और नित्य भजन हैं। इस भजन-लीलाका सर्वसाधारण व्यक्तियोंके निकट गान करना अनुचित एवं अपराध है। 'अपनी भजन-कथा जहाँ कहीं मत कहो'—इस आचार्य वाक्य पर विश्वास करने पर अर्थ-व्यवसायी गायकोंके मुखसे रस-गान श्रवण करना अपराध हो उठता है।"

—'भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध एवं रसाभास', स० तो० ६।२

१५—कभी शास्त्रविरुद्ध दुराचार देखकर

वैष्णवोंकी निन्दा करना क्या नामापराध नहीं है ?

"वैष्णव-शरीरमें कर्मगतिसे जो कुछ अशुभ जैसे दीखता है, उसे अशुभ समझने पर वैष्णव-अपराध होता है । वैष्णवका स्मृति शास्त्र-विरुद्ध कोई विशेष दुराचार देखने पर भी उन्हें 'साधु' ही जानना होगा, नहीं तो नामापराध होगा ।"

—'कुटीनाटी', स० तो० ६।७

१६—सेवापराधके कौन-कौन भागी हैं ?

"सेवापराध श्रीविग्रह-सेवा सम्बन्धमें ही होते हैं । जो व्यक्ति श्रीमूर्त्ति-सेवा करते हैं, उनके सम्बन्धमें कुछ अपराध हैं । जो व्यक्ति श्रीमूर्त्ति स्थापन करते हैं, उनके सम्बन्धमें कुछ अपराध हैं । जो व्यक्ति श्रीमूर्त्ति-दर्शन करने जाते हैं, उनके सम्बन्धमें कुछ अपराध हैं एवं सभीके लिए कुछ अपराध बतलाये गये हैं । यह सहज ही जाना जा सकता है ।"

—'सेवापराध', ह० चि०

१७—बत्तीस प्रकारके सेवापराध क्या-क्या हैं ?

"सेवापराध ये हैं—(१) पादुका पहनकर ईश्वर-मन्दिरमें जाना, (२) यानमें चढ़कर खुले शरीरसे वहाँ जाना, (३) उत्सवमें सेवा नहीं करना, (४) प्रणाम नहीं करना, (५) उच्छिष्ट अपवित्र शरीरसे प्रणाम, (६) एक हाथसे प्रणाम, (७) सामने प्रदक्षिण, (८) भगवान्‌के सामने पैर पसारना, (९) उनके सामने वीरासनपर बैठना, (१०) उनके आगे शयन, (११) उनके आगे खाना, (१२) उनके सामने झूठी बात कहना, (१३) ऊँचे स्वरसे बोलना एवं बकवास करना, (१४) निग्रह-अनुग्रह, (१५) युद्ध करना या आपसमें लड़ना, (१६) अभक्तिका कार्य करना, (१७) रोदन करना, (१८) क्रूर भाषा बोलना, (१९) पर-निन्दा, (२०) कम्बल ओढ़ना, (२१) पर-स्तुति, (२२) अश्लीलता दिखलाना, (२३) अधो-वायु त्याग करना, (२४) सामर्थ्यके रहनेपर भी गौण उपचार करना, (२५) भगवानको न निवेदन किया हुआ द्रव्य ग्रहण करना, (२६) कालमें उत्पन्न फलादि अर्पण नहीं करना, (२७) दूसरोंके द्वारा खाये अवशिष्टको निवेदन करना, (२८) भगवानके प्रति पीठ कर सामने आसन लगाना, (२९) देवताके सामने दूसरेको प्रणाम या पूजन करना, (३०) गुरुके प्रति मौन-आचरण, (३१) भगवान्‌के सामने अपनी स्तुति या प्रशंसा वर्णन करना एवं (३२) भगवानकी निन्दा । महापुराणोंमें ये ही सेवा-अपराध कहे गये हैं ।"

—'सेवापराध' ह० चि०

१८—अपराध क्या-क्या हैं एवं उनके क्या लक्षण हैं ?

"अपराध बहुत होने पर भी प्रधान रूपसे तीन भागोंमें विभक्त हैं—वैष्णवापराध, सेवापराध एवं नामापराध। वैष्णवापराध स्कन्द-पुराणमें कहे गये हैं—

हन्ति निन्दन्ति वै द्वेष्टि
वैष्णवान् नाभिनन्दति ।
क्रुध्यते याति नो हर्षं
दर्शने पतनानि षट् ॥

वैष्णवोंकी हत्या करना, निन्दा करना, द्वेष करना, अभिनन्दन नहीं करना, वैष्णवोंके प्रति क्रोध प्रकाश करना एवं वैष्णवोंको देखकर हर्ष नहीं होना—ये छः अपराधोंसे जीवोंका महापतन होता है। किसी भजन-

प्रयासीके लिए ये अपराध न हों । सेवा-अपराध श्रीमूर्त्ति-सेवा सम्बन्धमें ही विचार करने योग्य हैं । नामापराध—दस प्रकारके हैं।"

—'विशुद्ध भजन', स० तो० ११।७

१९—भागवत-व्यवसायी परित्याग करने योग्य क्यों हैं ?

"यह व्यवसाय (भागवत-पाठ) तुरन्त परित्याग करो। तुम रसके प्यासे हो। रसके निकट अपराध न करो । 'रसो वै सः' (तै० आ० २।७) शास्त्रोंमें भी कहे गये इस वेद-वाक्य द्वारा रस ही कृष्ण-स्वरूप हैं । शरीर-रक्षाके लिए शास्त्रोंमें अनेक उपाय एवं व्यवसाय कहे गये हैं, तुम उन्हें ग्रहण करो। साधारण लोगोंके निकट भागवत-पाठ कर अर्थ ग्रहण नहीं करना। यदि रसिक भक्त हो, तो वेतन या दक्षिणा न लेकर परमानन्दसे भागवत-पाठ करो एवं उन्हें श्रवण कराओ।"

—जै० ध० २८वाँ अ०

२०—हरिनाम-विक्रयी क्या अपराधी नहीं हैं ?

"जीविका-निर्वाह के लिए बहुतसे दूसरे-दूसरे उपाय हैं। उन्हें अवलम्बन कर वह कार्य करना चाहिए। * * हरिनाम विक्रय कर (बेचकर) अर्थ-संग्रह कर उस अर्थसे संसार-निर्वाहकी चेष्टा एवं ऐसे अर्थ-संग्रह को संसार-निर्वाह की वृत्ति-विशेष समझना बिलकुल अन्याय एवं भक्ति-विरुद्ध कार्य है। इसके द्वारा नामदाता एवं श्रोता दोनोंके लिए प्रेमफल प्राप्त करने की संभावना नहीं रहती। बल्कि उल्टे पापका संचय होता है। अर्थ हरिनामका मूल्य नहीं है। एकमात्र श्रद्धा ही इसका मूल्य है । अतएव श्रद्धासे नाम-कीर्त्तन एवं श्रवण करना सभीके लिए उचित है।" —'टहल', ससंगिनी स० तो० ८।८

२१—धामापराध करनेवालोंकी चेष्टा, परिचय एवं परिणाम किस प्रकार है ?

"कुछ लोग स्वार्थसिद्धिके उद्देश्यसे एवं ईर्ष्याके कारण श्रीमायापुरकी उन्नतिके साधनमें नाना प्रकारसे बाधाएँ दे रहे थे। वे लोग उस धामकी उन्नति देखकर अभी हताश हो गये हैं। दो एक व्यक्ति पूर्ण ईर्ष्याके वश होकर अभी भी नगण्य पत्रिकाओंमें दो एक बातें कह रहे हैं । महाप्रभुजी उनपर भी शीघ्र ही दमन-कार्य करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। *** आश्चर्यका विषय यही है कि बहुत दिनोंसे श्रीमायापुरकी यथार्थताको छिपाकर कुछ व्यक्ति कनक-कामिनीके संग्रहमें व्यस्त थे। जबसे श्रीमायापुरका माहात्म्य प्रकाशित होने लगा, उस समयसे ये सभी कलिके चर नाना आकारसे एवं नाना कौशलसे धामका माहात्म्य गोपन करनेकी चेष्टा करने लगे । किन्तु परमेश्वर एवं उनका सत्य अजेय है । ये दो वर्षोंमें कलिके चरोंके मुखमें काला चूना पड़ गया है । भक्त-जगत् उनकी बातपर विश्वास नहीं करता। इसलिए वे स्वयं ही हतबुद्धि हो पड़ रहे हैं। कलिका क्या खेल है ! अमावस्याको पूर्णिमा कहकर प्रकाश कर, उसमें उनकी क्रिया आरम्भ कर दी ! किन्तु दूसरे लोग उनके कार्यको पहचानकर चारों ओर उनकी हँसी उड़ा रहे हैं। इस समय सभी व्यक्ति ही यह समझ पाये हैं कि श्रीधाम मायापुर ही श्रीनवद्वीपका सर्वश्रेष्ठ चूड़ामणि-पीठ है।"

—'नये वर्षमें पिछले वर्षकी आलोचना' स० त० ८।१

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-सन्दर्भ–२१)

श्रीमद्भागवतके ११।१९।४० श्लोकमें उद्धवजीके "को लाभः" अर्थात् "लाभ क्या है ?"—इस प्रश्नके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—"लाभो मद्भक्तिरुत्तमः" अर्थात् मेरे प्रति शुद्ध भक्ति ही जीवोंके लिये परम लाभ है।

इस प्रकार भक्तिका अभिधेयत्व स्थापित हुआ। तब जो बहुत स्थानोंमें कर्मादिके साथ मिश्र रूपसे भक्ति धर्मका उपदेश दिया गया है, वह कर्मादि अभक्ति-मार्गमें निष्ठावाले व्यक्तियोंका भक्तिके साथ सम्बन्ध-स्थापन द्वारा उनको कृतार्थ करनेके लिये एवं उनमेंसे किसी किसीको आस्वादन कराकर शुद्ध भक्तिमें प्रवर्त्तित करनेके लिये ही है—ऐसा जानना चाहिये। सर्वत्र भक्तिका अभिधेयत्व (परम कर्त्तव्यता) कहनेके लिये फिरसे कहा है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसा धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥
(भा० ६।३।२२)

शुद्धनामादि ग्रहणादि द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके प्रति भक्तियोग ही इस मर्त्य-जगत् में जीवोंका परम धर्म कहा गया है।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
(भा० ६।३।२२)

सब प्रकारके कामनाविशिष्ट होकर हो, निष्काम रूपसे या मोक्षकी कामना लेकर ही क्यों न हो, बुद्धिमान् व्यक्ति तीव्र भक्तियोग द्वारा भगवान् श्रीहरिकी आराधना करेंगे।

सर्वेषामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः।
अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥
(भा० ११।१५।३५)

ब्रह्मवादियोंके सांख्य-धर्म (ज्ञान-योग) की सब प्रकारकी सिद्धियोंका मैं ही कारण हूँ, मैं ही पालयिता एवं मैं ही प्रभु हूँ। इन सभी स्थलोंमें भक्तिका ही परम धर्मत्व एवं सर्वकाम-प्रदान-सामर्थ्य दिखलाया गया है।

स्कन्द-पुराणमें सनत्कुमार-मार्कण्डेय-संवादमें कहा गया है—

विशिष्टः सर्वधर्माणां धर्मो
विष्वक्सेनार्चनं नृणाम्।
सर्वयज्ञतपोहोम-तीर्थस्नानैश्च-
यत्फलम् ॥
तत्फलं कोटिगुणितं विष्णुं सम्पूज्य वाप्नुयात्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नारायणमिहार्चयेत् ॥

सभी धर्मोंमें भगवान् श्रीविष्णुका अर्चन ही मानवोंका विशेष धर्म है। सभी यज्ञ, तपस्या, होम एवं तीर्थस्थानसे जो फल पाया जाता है, श्रीविष्णुकी पूजा कर उससे कोटि-

गुणा फल प्राप्त होता है। अतएव इस लोकमें सर्वप्रयत्नके साथ श्रीनारायणका ही अर्चन करेंगे।

इसी पुराणमें ब्रह्मा-नारदके संवादमें भी कहा गया है—

अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः करोति वै।
न हि तत्फलमाप्नोति मद्भक्तैर्यदवाप्यते॥

मेरे भक्त लोग जो फल प्राप्त करते हैं, हजारों अश्वमेध-यज्ञकारी व्यक्ति भी वह फल नहीं पाते।

द्वारका-माहात्म्यमें परमेश्वर-वाक्यमें कहा गया है—

मद्भक्तिं वहतां पुंसामिह लोके परेऽपि वा।
नाशुभं विद्यते लोके कुलकोटिं नयेद्दिवम्॥

मेरे भक्तोंके लिये इस लोकमें या परलोक में कोई अशुभ ही नहीं रहता, परन्तु मेरे प्रति भक्ति उनके कोटि कुलको दिव्यलोकमें ले जाती है।

श्रीविष्णु-पुराणमें भी कहा गया है—

स्मृते सकलकल्याणभाजनो यत्र जायते।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्॥

जिनका स्मरण करनेसे सभी जीव सभी प्रकारके कल्याणके पात्र होते हैं, ऐसे जन्म-रहित सनातन पुरुष श्रीहरिका शरणापन्न होता हूँ।

भक्तिकी सर्व विघ्न-विनाशकता—

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो॥
(भा० १०।२।३३)

हे माधव! हे प्रभो! आपमें बन्धुत्व-सूत्र द्वारा आबद्ध आपके भक्त लोग भक्तिमार्गसे कदापि भ्रष्ट नहीं होते। आपके द्वारा सब प्रकारसे रक्षित होकर वे लोग निर्भय होकर विघ्न करनेवाले दल-पतियोंके मस्तकके ऊपर विचरण करते हैं अर्थात् अनायास ही इन सभी विघ्नों पर जय प्राप्त करते हैं।

इसके पहले कहा गया है कि जो लोग भगवत्पादपद्मोंकी सेवाका अनादर कर अपने को मुक्त होनेका अभिमान करते हैं, वे लोग बहुत जन्मोंकी तपस्या द्वारा जीवन्मुक्ति-दशा पाकर भी भगवत्पादपद्मोंमें अनादर करनेके कारण अधःपतित होते हैं। किन्तु भक्तोंका ऐसा नहीं होता। वृत्रासुर, गजेन्द्र एवं भरतादि भक्तोंका उत्कृष्ट जन्मसे पतनादि होने पर भी उनका दूसरे जन्ममें भक्ति-वासना का अनुसरण देखा गया है। मुक्त व्यक्ति भी यदि अचिन्त्य महाशक्तिशाली भगवान्‌के निकट अपराधी हों, तो फिरसे संसार-वासना प्राप्त करते हैं। किन्तु भगवद्भक्त लोग कदापि भ्रष्ट नहीं होते। क्योंकि वे भगवान्‌में प्रीति सूत्रद्वारा आबद्ध हैं। इस श्रद्धामार्गमें साध-कत्वके कारण 'सौहृद' शब्दका प्रयोग किया गया है। भगवान्‌में बद्धप्रीतिके कारण ही भक्त लोग "त्वयाभिगुप्ता"—भगवान द्वारा सब प्रकारसे रक्षित होते हैं।

यह बात निम्नलिखित श्लोकमें विशेष रूपसे स्पष्ट की गई है—

त्वां सेवतां सुतकृता बहवोऽन्तरायः
स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते।

नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्द्धनि ॥
(भा० ११।४।१०)

अर्थात् तुम्हारी सेवा करनेवाले भक्तोंको स्वर्गभूमि अतिक्रम कर परम पदमें जाते देख कर इन्द्रादि देवता बहुतसे विघ्न उपस्थित करते हैं। किन्तु यदि तुम रक्षाकर्त्ता हो, तो तुम्हारे द्वारा सुरक्षित भक्त लोग अनायास ही विघ्नोंके मस्तकपर पद धारण करते हैं अर्थात् विघ्नोंसे अभिभूत या पराजित न होकर अनायास ही उन्हें पार कर लेते हैं।

फिरसे कहा गया है—

धावन् निमील्य वा नेत्रं न स्खलेन्न पतेदिह।
(भा० ११।२।३५)

इस भागवत धर्ममें दोनों नेत्र मूँदकर दौड़ने पर भी स्खलित या पतित नहीं होना पड़ता।

भगवान् विष्णुने कर्दम प्रजापतिको भी कहा है—

न वै जातु मृषैव स्यात् प्रजाध्यक्ष मदर्हणम्।
भगवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥
(भा० ३।२१।२४)

हे प्रजापते! मेरे प्रति एकाग्रचित्तवाले भक्तोंद्वारा किया गया अर्चन विशेषकर तुम जैसे व्यक्तियों द्वारा किया गया अर्चन, कदापि किसी प्रकारसे निष्फल नहीं होता।

और स्थानमें भी कहा गया है—

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥
(भा० ११।१४।१८)

विषय भोग द्वारा आकृष्ट होने वाले अजितेन्द्रिय प्राकृत भक्त भी मुझमें प्रबल भक्तिके प्रभावसे विषय द्वारा प्रायः ही अभिभूत या पराभूत नहीं होते। इस स्थलमें 'प्रायशः बाध्यमानत्व' शब्दमें कभी-कभी भगवद् ध्यानादिसे मेरे भक्तका विषयोंके प्रति आकृष्ट होना बतलाया गया है। ऐसा होने 'पर भी 'वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः' (भा० ११।२०।२७) अर्थात् कामनाओंको दुःख-दायी जानकर भी उन्हें परित्याग करनेमें असमर्थ है—इस न्यायके अनुसारसे उसका भी (उस प्राकृत भक्तका भी) विषयद्वारा पराजय नहीं होता। उस स्थलमें भगवान्के प्रति अपनी दीनता आदि निवेदनद्वारा भक्ति का ही पालन हुआ है, ऐसा ही जानना होगा।

दुष्ट जीवादिसे भक्तिद्वारा भयका निवारण होता है—

दिग्गजैर्दन्दशूकेन्द्रैरभिचारावपातनैः ।
मायाभिः सन्निरोधैश्च गरदानरभोजनैः ॥
हिम्वाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ।
न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ।
चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥
(भा० ७।५।४३–४४)

दिग्गज, हिंस्र साँप, कृत्यादि निर्माण, मारण आदि अभिचार, पर्वतके शिखरसे पातन, कूप या गड्ढेमें निरोध (अटकाना), विषदान, अनशन, हिम, वायु, अग्नि एवं जल में निक्षेप, उसके ऊपर पर्वतादि फेंकना आदि बहुतसे उपाय करने पर भी जब असुर लोग निष्पाप प्रह्लादको विनाश करनेमें समर्थ नहीं हो सके, तब वे अत्यन्त चिन्तासे युक्त हो गये।

विष्णु-पुराणमें भी प्रह्लादजीने कहा है—

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते बलं ममैतत् ।
महाविपत्पातविनाशनोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः ॥

वज्रके अग्रभागके समान कठोर ये हाथीके दाँत सभी मेरे प्रति प्रयुक्त होने मात्रसे चूर्ण-विचूर्ण हो गये, यह मेरा बल नहीं है; किन्तु जनार्दन स्मरणके द्वारा उत्पन्न महाविपत्ति नाशक प्रभाव मात्र है।

श्रीमद्भागवतमें (१०।६।३) कहा गया है—

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥

जहाँ मानवोंके स्वकर्ममें सात्वतपति श्रीकृष्ण की राक्षस (विघ्न) नाशकारी कथाके श्रवण-कीर्त्तनादि नहीं होते, वहीं पर राक्षसादियोंका उपद्रव होता है।

बृहन्नारदीयमें भी कहा गया है—

यत्र पूजापरो विष्णोस्तत्र विघ्नं न बाधते ।
राजा च तस्करश्चापि व्याधयश्च न सन्ति हि ॥
प्रेताः पिशाचाः कुष्माण्डा ग्रहा बालग्रहास्तथा ।
डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्चकम् ॥

जिस स्थानमें विष्णुपूजा करनेवाले भक्त वर्त्तमान हैं, उस स्थानमें कोई भी विघ्न पीड़ा नहीं देते। क्या राजा, क्या चोर, क्या व्याधि किसीका भी उपद्रव नहीं रहता। विघ्न करनेवाले प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड (गणदेवता), ग्रह, बालकघाता ग्रह, डाकिनी, राक्षस आदि कोई अपदेवयोनिके प्राणी भगवान् श्रीअच्युतके पूजकको पीड़ा नहीं दे सकते।

भागवत (३।२२।३७) में कहा गया है—

शारीरा मानसा दिव्या
वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा
बाधेरन् हरिसंश्रयम् ॥

जिनके हृदयमें भगवान् श्रीमधुसूदन स्थित हैं, उस व्यक्तिको दुर्वासाका भयंकर शाप या इन्द्र का वज्र भी विनाश करनेमें समर्थ नहीं होता।

यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥

(भा० ११।१४।१९)

हे उद्धव ! प्रज्ज्वलित आग जिस प्रकार काठके ढेरको जलाकर खाक करती है, उसी प्रकार भक्ति भी सारे पापका नाश करती है। **श्रीधरस्वामि-टीका**—पाकादिके लिए प्रज्ज्वलित आग जिस प्रकार लकड़ियोंको जला देती है, उसी प्रकार वाक्यद्वारा किसी प्रकारसे को गई मेरी भक्ति भी समस्त पापोंका विनाश करती है। इसलिए साक्षात् भगवान् भी अपनी भक्ति-महिमाका प्रभाव स्मरण कर विस्मय होनेके कारण कह रहे हैं—"हे उद्धव ! आश्चर्यकी बात श्रवण करो।"

पद्मपुराणके पातालखण्ड, वैशाख-माहात्म्यमें—

यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
पापानि भगवद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात् ॥

तीव्र प्रज्ज्वलित आग जिस प्रकार सभी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार भगवद्भक्ति भी सभी पापोंको तुरन्त जला देती है।

'सुसमृद्धार्च्चिः'—इस पदद्वारा साधनभक्तिकी कर्मज्ञानादि दूसरे साधनोंकी

सापेक्षता, असाध्य-साधन एवं फल उत्पन्न करनेमें विलम्ब आदिका पूर्ण रूपसे खण्डन किया गया है। अर्थात् भक्ति जो कर्म-ज्ञान आदिसे सम्पूर्ण निरपेक्षा है, भक्ति जो सभी साध्यका ही साधन है या भक्तिके प्रभावसे ही जो सभी वस्तु पाये जाते हैं एवं तुरन्त सभी फल प्राप्त होते हैं--इन सभी बातों का स्थापन हुआ।

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः।
अघ धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः॥
(भा० ६।१।१५)

सूर्य जिस प्रकार हिमराशिको सम्पूर्णरूपसे दूर कर देता है, उसी प्रकार वासुदेव-परायण कोई कोई ऐकान्तिक भक्त केवला या विशुद्ध भक्तियोगसे पापको जड़से उखाड़ फेंकते हैं; इस पदद्वारा इस प्रकारके ऐकान्तिक भक्तिप्रधान साधक दुर्लभ हैं, यह कहनेके लिए है। 'वासुदेवपरायणः'--यह पद 'केवला भक्ति'-पथके अधिकारी व्यक्तियोंका विशेषण नहीं है, किन्तु दूसरे-दूसरे साधक केवला भक्तिमें अप्रवृत्त होनेके कारण अर्थात् ऐकान्तिक भक्तोंमें ही 'केवला भक्ति' रहनेके कारण 'वासुदेवपरायणः' पद यहाँ अनुवादके रूपमें उल्लेख किया गया है। अर्थ यही हुआ कि सूर्य जिस प्रकार केवल मात्र अपने किरणोंद्वारा सहज ही हिमका सम्पूर्णरूपसे विनाश करता है, उसके विनाशके लिए और कोई प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार वासुदेवपरायण व्यक्ति भी केवला भक्तिसे ही सहज रूपमें सारे पापोंका नाश करते हैं। इसके लिए उन्हें दूसरे कोई प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है।

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रभुदेव श्रौती महाराज

हरिभक्तका जीना ही सार्थक है

हरिस्मृत्याह्लाद-स्तिमित-मनसो यस्य कृतिनः सरोमाञ्चः कायो नयनमपि सानन्द-सलिलम्।
तमेवाचन्द्रार्कं वह पुरुषधौरेयमवने ! किमन्यैस्तैर्भारैर्यमसदनगत्यागतिपरैः ? ॥
(श्रीपद्यावलीसे श्रीसर्वानन्दका श्लोक)

अतएव सर्वानन्दप्रद अन्वर्थ नामा श्रीसर्वानन्दजी भी कहते हैं कि--जिस पुण्यात्माका मन श्रीहरि स्मृतिजनित आनन्द मात्रसे द्रवीभूत हो जाता है, शरीर रोमाञ्चोंसे युक्त हो जाता है, एवं नयनयुगल भी आनन्दाश्रुओंसे परिपूरित हैं, हे धरणि माता ! ऐसे पुरुषरत्नको ही आप सूर्य-चन्द्रमा जब तक रहें, तब तक धारण करती रहो। और अपने पापोंके कारण बारंबार यमराजके दरबारमें आने जाने वाले भारभूत जनोंके धारण करनेसे क्या प्रयोजन ?

प्रचार-प्रसंग

श्रीश्रीराधाष्टमी-महोत्सव

पूर्व पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समितिके मूल-मठ एवं सभी शाखा मठोंमें ३० भाद्र, १६ सितम्बर, शनिवारके दिन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी अभिन्न पराशक्ति रूपा एवं ह्लादिनी शक्तिकी अधिष्ठात्री देवी स्वयं भगवती श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीकी आविर्भाव तिथि बड़े आदर एवं समारोहके साथ मनाई गई है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें सबेरे मंगल आरतिके पश्चात् गुरु-वन्दना, गुर्वष्टक, गुरु-परम्परा आदिका कीर्त्तन हुआ। तत्पश्चात् श्रीमती राधिकाजीकी अलौकिक महिमा-सूचक एवं उनके परमाराध्यतम श्रीचरणोंमें दैन्य-प्रार्थनामूलक महाजन विरचित पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया। उसके पश्चात् श्रीब्रह्मवैवर्त्त पुराणसे श्रीमती राधिकाजीके आविर्भाव वृत्तान्त एवं अनन्ताद्भुत महिमाका पाठ किया गया। दोपहरको श्रीमती राधिकाजीके अर्चन एवं भोग-रागके पश्चात् उपस्थित श्रद्धालु सज्जनोंको सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील प्रभुपादजीके इस विषय सम्बन्धी प्रबन्धादियोंकी आलोचना की गई।

श्रीमती राधिकाजीका तत्व बड़ा ही गोपनीय, दुर्बोध एवं अधिकारी-सापेक्ष है। अतएव जो व्यक्ति श्रीमती राधिकाजीके निजजनोंके दासानुदास हो चुके हैं या होने की तीव्रतम अभिलाषा एवं उत्कण्ठा रखते हैं उनके संगमें ही इस विषय पर चर्चा बद्ध जीवोंके लिये लाभदायक है। अन्यथा विपरीत धारणा एवं जड़ीय चिन्ताके वशीभूत होकर घोर पतनकी सम्भावना है। वैष्णव सम्प्रदायोंमें विशेषकर श्रीरूपानुग गौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीमती राधिकाजीकी मर्यादा एवं स्वयं भगवान कृष्णसे भी अधिक पूजनीयता सर्वविदित है। अधिकांश व्यक्ति स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्रकी महिमा जानने पर भी बहुत ही अल्प संख्यक एवं परम ऐकान्तिक वैष्णव लोग ही श्रीमती राधिकाजीकी महिमासे परिचित हैं। अतएव श्रीमती राधिका हम जैसे पतित एवं नगण्य बद्ध जीवोंके लिए कितने महान आदर एवं परम श्रद्धाकी पात्री हैं, यह कहनेकी अधिक क्या आवश्यकता है?

जगद्गुरु श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव-महोत्सव

पूर्व पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत ४ आश्विन, २१ सितम्बर वृहस्पतिवार के दिन स्वयं भगवान् श्रीश्रीगौरचन्द्रके निजजन एवं श्रीकृष्णलीला की अन्यतम मञ्जरी स्वरूप एवं सप्तम गोस्वामी नामसे विख्यात जगद्वरेण्य ॐ विष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद

ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव समितिके मूल मठ एवं सभी शाखा मठोंमें बड़े ही समारोह-पूर्वक मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें सबेरे मंगल आरती एवं गुरु-वंदना, गुरु परम्परा आदि कीर्त्तनके पश्चात् श्रील भक्तिविनोद ठाकुर विरचित पदावलियोंका कीर्त्तन किया गया। तत्पश्चात् पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त हरिजन महाराजने इन महापुरुष-शिरोमणिके अलौकिक जीवन-चरित्र, आविर्भाव-कारण आदि पर पाठ किया। दोपहरको श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीको नाना व्यंजन एवं मिष्टान्न आदिका भोग समर्पण किया गया। भोग-राग एवं आरतिके पश्चात् उपस्थित सभी श्रद्धालु सज्जनोंको समधुर महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको सन्ध्या आरति एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित पदावलियोंके कीर्त्तनके पश्चात् एक विशेष सभाका आयोजन किया गया। श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी एवं श्रीनवयोगेन्द्र ब्रह्मचारीने जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के अतिमर्त्य जीवनकी विशेष-विशेष पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए भावपूर्ण शब्दोंमें उनको अश्रुतपूर्व एवं जगद् विलक्षण शिक्षाओंपर संक्षेपमें भाषण देते हुए उनके परमाराध्यतम श्रीचरणोंमें कृपा भिक्षा प्रार्थना करते हुए श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्हरिजन महाराजने भाव गद्गद् वचनोंसे जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी शिक्षाओंका उल्लेख करते हुए उनके अतिमर्त्य जीवन-चरित्रकी कुछ विशेष एवं गोपनीय घटनाओंका वर्णन किया एवं उनके प्रति अपनी महान् श्रद्धा एवं कृतज्ञता ज्ञापन की। सभाके अन्तमें कीर्त्तनके पश्चात् कार्यक्रम का समापन हुआ।

श्रीव्रजमण्डल एवं भारतके प्रमुख तीर्थोंकी परिक्रमा

गत १२ सितम्बर, मंगलवारको समितिके विशिष्ट यति त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त हरिजन महाराजने श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारी, श्रीनवयोगेन्द्र ब्रह्मचारी, श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीविश्वरूप ब्रह्मचारी आदिके साथ २५–३० यात्रियोंको लेकर श्रीव्रजमण्डल एवं भारतके प्रमुख तीर्थोंकी परिक्रमा करनेके उद्देश्यसे श्रीधाम नवद्वीपसे प्रस्थान किया। गया, वाराणसी, प्रयाग आदि होते हुए श्रीधाम मथुरामें उपस्थित हुए। समितिके शाखा मठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुराको केन्द्र कर श्रीकृष्ण जन्म-स्थली, कंस-कारागार, आदि-केशव, आदि-वराह, दीर्घविष्णु, अनन्त पद्मनाभ आदिका दर्शन किया। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् नन्दनन्दनके जन्म स्थान महावन, गोकुल, नन्दगाँव, संकेत, बरसाना, गोवर्धन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, मानसी गंगा, वृन्दावन, रासस्थली, गोविन्द-गोपीनाथ-मदनमोहन आदिका दर्शन कर इन्द्रप्रस्थ, पुष्करके लिये प्रस्थान किया। वहाँसे नाथद्वार, जयपुर, नासिक, आदि होते हुए मद्रास पहुँचकर पक्षी-तीर्थ, तंजौर, कांजीवरम्, मदुरई, कन्याकुमारी, रामेश्वरम्, त्रिवेन्द्रम् आदि के दर्शन कर श्रीधाम पुरीका दर्शन कर मासाधिक कालके पश्चात् श्रीधाम नवद्वीप प्रत्यावर्त्तन करेंगे।

पश्चिम बिहार एवं दक्षिण बिहारमें प्रचार

श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी एवं श्रीनन्दोत्सवके पश्चात् वहाँसे प्रस्थान कर समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्यवर परिव्राजकाचार्य परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराज साथमें कुछ ब्रह्मचारियोंको लेकर बिहारके संथाल परगनाके अन्तर्गत धाधिका, कुमड़ाबाद, पाकुड़, सारसाजोल, दुमका आदि विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर इस समय जारमुण्डी नामक स्थानमें बड़े ही तुमुल एवं विराट समारोहके साथ स्वयं भगवान् श्रीमन्महाप्रभुकी अमन्दोदया वाणीका बड़ी ओजस्विता पूर्वक प्रचार कर रहे हैं। वहाँसे बिहारके अन्यान्य स्थानोंके लिए प्रस्थान करेंगे।

समितिके अन्यतम विशिष्ट प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज अपने साथमें श्रीभक्त्यांघ्रिरेणु ब्रह्मचारी, श्रीगोविन्द ब्रह्मचारी, श्रीहरेकृष्ण ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्धन ब्रह्मचारी, श्री जयदेव ब्रह्मचारी आदिको लेकर दक्षिण बिहारके विशिष्ट नगर रांची एवं तत् पार्श्ववर्त्ती स्थानोंमें बड़े जोर-शोरसे एवं जोशके साथ श्रीमन्महाप्रभुकी अलौकिक वाणीका प्रचार कर रहे हैं। वहाँसे बिहारके टाटानगर एवं अन्यान्य स्थानोंमें प्रचार करेंगे।

—निजस्व संवाददाता

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

मधुर-भक्तिरस

(गतांक, पृष्ठ ९६ से आगे)

गोपियोंकी पारकीयतामें लेशमात्र भी लज्जा या दोष नहीं है। क्योंकि साधारण जड़-आलंकारिक लोगोंके मतानुसार परोढ़ा एवं वेश्याकी निन्दाकी जो बात सुनी जाती है, वह यहाँ उपयुक्त नहीं बैठती। गोकुलकी रमणियाँ कृष्णकी नित्यशक्ति होकर भी गोलोकमें जो पारकीय रस आस्वादन करती हैं, वह रस सर्वोत्कृष्ट है। कृष्णचन्द्र उस रसास्वादको जगतमें लानेके लिए अपने गोलोककी रमणियोंको गोकुलमें लाये थे, इसमें दोष क्या है? वे तो प्राकृत नायक नहीं हैं; यह जो भी हुआ है, जीवोंके कल्याणके लिए ही हुआ है। ऐसा नहीं होनेसे जीव किस प्रकार मधुर रस आस्वादन कर सर्वोत्तम रस पानेके योग्य होते? गोपी होकर मधुर रसद्वारा कृष्णकी सेवा ही भक्तोंको

करनी चाहिये। जो व्यक्ति कृष्ण बननेकी चेष्टा करते हुए इस रसका आस्वादन करेंगे, अवश्य उनका अति शीघ्र ही नरक-गमन होगा। शठ, धूर्त्त एवं कपटता परायण व्यक्ति ही ऐसा अपराध किया करते हैं।

कोटि-कोटि मुक्तोंमें एक भगवद्भक्त दुर्लभ है। जो लोग ऐश्वर्य भावके भक्त हैं, वे भी गोलोकका दर्शन नहीं पाते। वे लोग जड़मुक्त होकर वैकुण्ठमें अपने-अपने भावानुसार ऐश्वर्यमूर्त्तिकी सेवा करते हैं। जो व्यक्ति व्रज रसके द्वारा कृष्ण-भजन करते हैं, उनमेंसे जिन्हें कृष्ण कृपाकर अशेष बन्धनसे मुक्त कर उद्धार करते हैं, वे ही गोलोक देख पाते हैं। वस्तुसिद्ध भक्त कृष्णकी कृपासे साक्षात् गोलोकमें चले जाते हैं। स्वरूप सिद्ध भक्तोंकी व्रजके भौम देशमें गोपी अभिमानसे अवस्थिति है। अत्यन्त तमोगुणी व्यक्ति व्रज भजन काल में सबकुछ जड़मय देखते हैं। रजोगुणी व्यक्ति (साधक) उससे कुछ अच्छा दर्शन प्राप्त करते हैं। सत्वगुणी भक्त गोकुलमें गोलोकका आभास अनुभव करते हैं। निर्गुण व्रजभक्त अत्यन्त शीघ्र ही कृष्ण-कृपासे निर्गुण गोपी-देह द्वारा गोलोक प्राप्त करते हैं। मायिक विश्वास द्वारा उत्पन्न भाव जितना ही दूर होता है, गोलोक उतना ही स्पष्ट होता है। यशोदाका प्रसव, कृष्णका सूतिका-गृह, अभिमन्यु-गावद्धन आदिके साथ नित्यसिद्धा गोपियोंका विवाहमूलक पारकीय अभिमान अत्यन्त स्थूल रूपसे व्रजमें देखा जाता है। यह सब कुछ ही योगमाया द्वारा सम्पन्न होता है एवं अत्यन्त सूक्ष्म मूलतत्त्वमें संयोजित है। यह जरा भी झूठा नहीं है एवं गोलोकका ही सम्पूर्ण रूपसे समानता युक्त है। गोलोकमें उस-उस तत्त्वका रसपोषक अभिमान मात्र नित्य वर्त्तमान है। व्रज-रमणी अभिमानसे जो व्यक्ति अष्टकाल लीला-सेवाके साधक हैं, वे लोग भौम-व्रजकी प्रतीति (अनुभूति) अवलम्बन करेंगे। उसमें जिस परिमाणमें कृष्ण-कृपाकी प्राप्ति होगी, उसी परिणाममें सेवाकी शुद्धता अपने आप ही आयेगी। यदि कहो कि महाप्रलयमें क्या व्रजलीला नहीं रहती? उसका उत्तर यही है उस समय गोलोकमें सभी लीलायें विराजमान रहती हैं। अष्टकाल साधनसे ही दैनन्दिन नित्यलीला प्राप्त होती है। स्थितिकालमें व्रज-लीला चक्रकी तरह एक-एक ब्रह्माण्डमें घूम रही है। महाप्रलयमें सब कुछ गोलोकमें जाकर विराजमान रहती है। अप्रकट-लीलाकालमें माथुर-धाम जीवके साधनानुकूल होकर तिरोहित नहीं होते। भौम मण्डलमें ही चक्रकी तरह भ्रमण करते हैं। यह बात यहीं तक रखो जाय। अब मुख्य विषयकी ओर बढ़ें।

हमारे कृष्णको छोड़कर और कोई दूसरा नायक नहीं है। वे कृष्ण द्वारकामें पूर्ण, मथुरामें पूर्णतर एवं व्रजमें पूर्णतम हैं। कृष्ण पति एवं उपपति भेदसे दो प्रकार हैं। अतएव तीनों धामोंमें वे छः प्रकारके हैं। धीरोदात्तादि चार प्रकारके भेदसे चौबीस प्रकारके हैं। अनुकूल, दक्षिण, शम, धृष्ट भेदसे चौबीसको चारगुण कर कृष्ण छियानबे प्रकारके नायक होते हैं। स्वकीय-रसमें चौबीस प्रकार एवं परकीय-रसमें चौबीस प्रकार। व्रजमें कृष्ण का परकीय नायकत्व चौबीस प्रकारसे नित्य वर्त्तमान है। व्रज-नायक श्रीकृष्णका अवलंबनत्व संक्षेपमें यहाँ तक दिखलाया गया।

नायकके सहायक पाँच प्रकारके हैं—चेट, विट, विदूषक, पीठमर्दक एवं प्रिय-नर्मसखा। सभी ही नर्मवाक्य प्रयोगमें निपुण, गाढ़ अनुरागी, देश-कालके ज्ञाता, बड़े ही कुशल एवं चतुर, गोपियोंको प्रसन्न करने वाले एवं निगूढ़ मन्त्रणाओंके वेत्ता हैं। सन्धान-चतुर, गूढ़ कर्मकारी, प्रगल्भ बुद्धिवाले भंगुर-भृङ्गरादि गोकुलमें कृष्णका चेट-कार्य करते हैं। वेश रचनाकी कलामें कुशल, धूर्त्त, कथोपकथनमें चतुर, वशीकरणादि क्रियामें कुशल, कड़ार-भारतीबन्ध आदि कृष्णके विट हैं। भोजनप्रिय, कलहप्रिय, अङ्ग-विकृतिमें पटु, वचन-चतुर एवं भेषद्वारा हास्यकारी वसंतादि गोप और मधुमंगल आदि कृष्णके विदूषक हैं। नायककी तरह गुणवान होकर भी नायकके अनुसरणकारी श्रीदाम ही कृष्णके पीठमर्दक हैं। अत्यन्त गूढ़ रहस्यके जानने वाले सखीभावाश्रित सुबल और अर्जुनादि कृष्णके प्रिय-नर्म सखा हैं तथा अन्य प्रणयी जनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। चेट गणोंका दास्य, पीठमर्दकका वीर रस एवं दूसरे सभीका सख्य रस है। चेट लोग किंकर हैं और दूसरे चार प्रकारके सभी ही सखा हैं।

दूतियाँ सहाय करनेवालियोंमें परिगणिता हैं। दूतियाँ दो प्रकारकी हैं—स्वयं-दूती एवं आप्त दूती। कटाक्ष और वंशीध्वनि ही स्वयं-दूतियाँ हैं। प्रगल्भ बचनोंमें चतुर वीरा एवं चाटु (प्रशंसामयी) उक्तियोंमें चतुर वृन्दा—ये दोनों कृष्णकी आप्त-दूतियाँ हैं। लिंगिणी, दैवज्ञा और शिल्पकारिणी आदि कृष्णकी अनेक साधारणी दूतियाँ हैं।

कृष्ण-वल्लभा गोपियाँ इस रसके आश्रय रूप आलम्बन हैं। स्वकीया और परकीया भेदसे वे दो प्रकारकी हैं। व्रजमें स्वकीयाओं का परिचय अस्पष्ट है। व्रजमें परकीया कृष्ण-वल्लभाओंका ही विशेष परिचय है। व्रजेन्द्र-नन्दन श्रीकृष्णकी व्रजवासिनी प्रियायें प्रायः ही परकीया हैं क्योंकि परकीया रमणीके बिना मधुर रसका अत्यन्त उत्कृष्ट विकास नहीं होता। सम्बन्ध योगके कारण पुर-वनिता आदियोंका रस संकुचित है। विशुद्ध कामके कारण व्रज-ललनाओंका रस असंकुचित एवं कृष्णका अधिक सुख विधान करता है। शृङ्गार रसके ज्ञाता रुद्रका कहना है कि स्त्रियोंकी वामता एवं दुर्लभताके कारण निवारणादि जो प्रतिबन्धकता (विघ्न) है, वही कन्दर्प (कामदेव) का परम अस्त्र है। विष्णुगुप्तने भी यही बात कही है। जब परोढ़ा व्रजवासिनियाँ कृष्ण भोगकी लालसा करती हैं उस समय वे सहज ही सर्वोत्तम शोभा एवं सद्गुण वैभव द्वारा प्रेम और सौन्दर्यसे पूर्ण रूपसे भूषित हो जाती हैं। लक्ष्मी आदि शक्तियोंमें इस प्रकारसे रस-माधुर्यकी वृद्धि नहीं होती। साधनपरा, देवी और नित्य प्रिया भेदसे व्रज-गोपियाँ तीन प्रकारकी हैं। साधनपरा सुन्दरियाँ यौथिकी और अयौथिकी भेदसे दो प्रकारकी हैं। यूथमें मिलित होनेके कारण मुनि लोग और उपनिषदें व्रजमें गोपी होकर यौथिकी हैं।

जो सभी मुनि लोग गोपालके उपासक होकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके वे रामचन्द्रजीके सौन्दर्यको देखकर अपने अभीष्ट साधनमें यत्न करने लगे। वे ही भाव प्राप्त होकर व्रजमें गोपियोंके रूपमें जन्म ग्रहण किये थे। सूक्ष्मदर्शी और महा उपनिषद्गण गोपी जन्ममें साधनपरा हुए थे। जिन सभी देवियों

ने ब्रह्माकी आज्ञासे ब्रजमें कृष्ण सेवाके लिये जन्म लिया था एवं जब कृष्णने अपने अंशसे स्वर्गमें अवतार लिया था, उस समय जिन सभी देवियोंने उनकी सेवा की थी, उन्हें ही ब्रजमें देवी कहा जाता है। ये देवियाँ ही श्रीमती राधिकाजीकी प्राणसखियोंमें गिनी गई हैं।

नित्य सिद्धाओंके सम्बन्धमें योगमाया रचित जो ब्रज-व्यापार है, वह सम्पूर्ण निर्दोष है। क्योंकि यह माया जड़माया नहीं है। योगमाया चिच्छक्तिसे ही कृष्णकी इच्छासे इस ब्रज व्यापारका विधान किया गया है। वेदमाता गायत्री गोपी-जन्ममें कृष्णका संग पाकर काम गायत्री हुई थीं। नित्य सिद्धाओं के साथ सालोक्य प्राप्त करते हुए ये सभी उपनिषद्, गायत्री देवी एवं स्वर्गकी देवियोंने परकीया भावसे कृष्णकी सेवा की थी।

राधा एवं चन्द्रावली जिनमें सर्वप्रधाना हैं, ऐसी नित्य प्रियाएँ ब्रजमें कृष्णकी तरह सौन्दर्य, विदग्धादि गुणोंकी आलय स्वरूपा हैं। सच्चिदानन्दरूप परम तत्त्वका आनन्दांश जब चिदंशको क्षोभित करता है, तब उससे पृथक की गयी ह्लादिनी-प्रतिभा द्वारा भाविता श्रीमती राधिकादि जो सभी ललनाएं उदित होती हैं, उनके साथ अपने रूप अर्थात् चिद् स्वरूप द्वारा जब चौसठ कलाओंका उदय होता है, उन सभीके साथ अखिलात्म-भूत कृष्ण नित्य गोलोक धाममें लीला करते हैं। स्कन्द-पुराण एवं प्रह्लाद-संहिता आदि शास्त्रोंमें राधा, चन्द्रावली, विशाखा, ललिता, श्यामा, पद्मा, शैव्या, भद्रिका, तारा, विचित्रा, गोपाली, धनिष्ठा, पाली आदियोंका नाम उल्लेख किया है। चन्द्रावलीजीका दूसरा नाम सोमाभा है। एवं श्रीमती राधिकाजीका दूसरा नाम गान्धर्वा है।

खंजनाक्षी, मनोरमा, मंगला, विमला, लीला, कृष्णा, सारी, विशारदा, तारावली, चकोराक्षी, शङ्करी और कुमकुमा आदि ब्रजाङ्गनाएँ भी लोक-प्रसिद्ध हैं। ये सभी गोपियाँ यूथेश्वरी हैं। यूथ भी सैकड़ोंकी संख्या में हैं। प्रत्येक यूथ-यूथमें सभी वराङ्गनाएँ लाखोंकी संख्यामें हैं। विशाखा, ललिता, पद्मा और शैव्या अत्यन्त विशेष रूपसे कीर्त्तित हुई हैं। यूथेश्वरियोंमें श्रीमती राधा आदि अत्यन्त सौभाग्यकी अधिकताके कारण प्रधाना हैं। विशाखा, ललिता, पद्मा, शैव्या आदि यूथके आधिपत्यमें विशेष योग्य होने पर भी श्रीमती राधिकाजीके परमानन्द भावसे मुग्ध होकर विशाखा और ललिता राधाके अनुगत सखी हैं एवं पद्मा और शैव्या चन्द्रावलीके अनुगत हुईं, ऐसा शास्त्रोंमें कहा गया है। श्रीमती राधिका सभी यूथेश्वरियोंमें प्रधाना हैं। उनके यूथमें अधिकांश ही ललिताजीके गणके रूपमें परिचित है, कोई-कोई विशाखाके गण हैं। परम भाग्यफलसे श्रीमती ललिताजीके यूथमें प्रवेश प्राप्त होता है।

(क्रमशः)